Vol 4 Issue 8 Feb 2015 ISSN No :2231-5063

International Multidisciplinary Research Journal

Golden Research Thoughts

Chief Editor
Dr.Tukaram Narayan Shinde

Publisher
Mrs.Laxmi Ashok Yakkaldevi

Associate Editor
Dr.Rajani Dalvi

Honorary
Mr.Ashok Yakkaldevi

Welcome to GRT

RNI MAHMUL/2011/38595 **ISSN No.2231-5063**

Golden Research Thoughts Journal is a multidisciplinary research journal, published monthly in English, Hindi & Marathi Language. All research papers submitted to the journal will be double - blind peer reviewed referred by members of the editorial board.Readers will include investigator in universities, research institutes government and industry with research interest in the general subjects.

International Advisory Board

Flávio de São Pedro Filho
Federal University of Rondonia, Brazil

Kamani Perera
Regional Center For Strategic Studies, Sri Lanka

Janaki Sinnasamy
Librarian, University of Malaya

Romona Mihaila
Spiru Haret University, Romania

Delia Serbescu
Spiru Haret University, Bucharest, Romania

Anurag Misra
DBS College, Kanpur

Titus PopPhD, Partium Christian University, Oradea,Romania

Mohammad Hailat
Dept. of Mathematical Sciences, University of South Carolina Aiken

Abdullah Sabbagh
Engineering Studies, Sydney

Ecaterina Patrascu
Spiru Haret University, Bucharest

Loredana Bosca
Spiru Haret University, Romania

Fabricio Moraes de Almeida
Federal University of Rondonia, Brazil

George - Calin SERITAN
Faculty of Philosophy and Socio-Political Sciences Al. I. Cuza University, Iasi

Hasan Baktir
English Language and Literature Department, Kayseri

Ghayoor Abbas Chotana
Dept of Chemistry, Lahore University of Management Sciences[PK]

Anna Maria Constantinovici
AL. I. Cuza University, Romania

Ilie Pintea,
Spiru Haret University, Romania

Xiaohua Yang
PhD, USA

.....More

Editorial Board

Pratap Vyamktrao Naikwade
ASP College Devrukh,Ratnagiri,MS India

R. R. Patil
Head Geology Department Solapur University,Solapur

Rama Bhosale
Prin. and Jt. Director Higher Education, Panvel

Salve R. N.
Department of Sociology, Shivaji University,Kolhapur

Govind P. Shinde
Bharati Vidyapeeth School of Distance Education Center, Navi Mumbai

Chakane Sanjay Dnyaneshwar
Arts, Science & Commerce College, Indapur, Pune

Awadhesh Kumar Shirotriya
Secretary,Play India Play,Meerut(U.P.)

Iresh Swami
Ex - VC. Solapur University, Solapur

N.S. Dhaygude
Ex. Prin. Dayanand College, Solapur

Narendra Kadu
Jt. Director Higher Education, Pune

K. M. Bhandarkar
Praful Patel College of Education, Gondia

Sonal Singh
Vikram University, Ujjain

G. P. Patankar
S. D. M. Degree College, Honavar, Karnataka

Maj. S. Bakhtiar Choudhary
Director,Hyderabad AP India.

S.Parvathi Devi
Ph.D.-University of Allahabad

Sonal Singh,
Vikram University, Ujjain

Rajendra Shendge
Director, B.C.U.D. Solapur University, Solapur

R. R. Yalikar
Director Managment Institute, Solapur

Umesh Rajderkar
Head Humanities & Social Science YCMOU,Nashik

S. R. Pandya
Head Education Dept. Mumbai University, Mumbai

Alka Darshan Shrivastava
Shaskiya Snatkottar Mahavidyalaya, Dhar

Rahul Shriram Sudke
Devi Ahilya Vishwavidyalaya, Indore

S.KANNAN
Annamalai University,TN

Satish Kumar Kalhotra
Maulana Azad National Urdu University

Address:-Ashok Yakkaldevi 258/34, Raviwar Peth, Solapur - 413 005 Maharashtra, India
Cell : 9595 359 435, Ph No: 02172372010 Email: ayisrj@yahoo.in Website: www.aygrt.isrj.org

Golden Research Thoughts
ISSN 2231-5063
Impact Factor : 3.4052(UIF)
Volume-4 | Issue-8 | Feb-2015
Available online at www.aygrt.isrj.org

काव्य भाषा–सामान्य रूप और प्रभाव (विशेष संदर्भ मध्यकालीन काव्य भाषा

मंजुला पाण्डेय

सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), हिन्दी विभाग , शास.महा.वि.मरवाही,जिला–बिलासपुर (छ.ग.)

सांराश : मध्यकालीन काव्य भाषा की शक्ति और वैविध्य प्रायः अतुलनीय हैं। वैविध्य उसके अर्थ वैभव का प्रधान स्रोत हैं। कबीर और दकनी के कवियों से लेकर भिखारी दास तक (1458–1750ई.) हिन्दी काव्य भाषा में न जाने कितनी काव्य भंगिमाये तथा अर्थ क्षमता से विकसित होती हैं। व्यावहारिक प्रयोग, शब्द समूह, अप्रस्तुत तथा छंद योजना, और बिंब विधान में यह भाषिक प्रवाह एक रस चलता है, फिर भी तीन सौ वर्षो की इस अवधि में काव्य भाषा के आधार कई बार बदले है–खड़ी बोली, खड़ी बोली ब्रज, अवधी, ब्रज भाषा इन बदलते आधारों ने काव्य भाषा के रूप को कहीं विच्छिन्न नहीं किया, वरन उसे हर बार शक्ति का एक नया स्त्रोत प्रदान किया। इसी माने में हिन्दी काव्य भाषा का प्रवाह अतुलनीय कहा गया हैं। इतनी आधार भाषाओं ने मिलकर एक काव्य भाषा का निर्माण कहीं नहीं किया। (1)

प्रस्तावना :

अठारह बोलियों वाले हिन्दी क्षेत्र (प्राचीन शब्दावली में जिसे श्मध्यदेशश कहा गया) में कोई एक बोली परिनिष्ठित काव्य–भाषा के रूप में व्यवहृत होती आ रही हैं। ऐसी स्थिति में हिन्दी काव्यभाषा की परंपरा हिन्दी क्षेत्र की बोलियों के शब्द समूह और विशिष्ट प्रयोगों से ही समृद्व नहीं हुई, वरन् उन जनपदीय क्षेत्रों की सांस्कृतिक विरासत भी हिन्दी में संक्रमित होती गयी। हिन्दी के बहुजनपदीय रूप ने उसकी प्रकृति को व्यापक और सांश्लिष्ट बनाया हैं। हिन्दी इस दृष्टि से विशाल मध्यदेशीय मानस की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति का श्रेष्ठतम् और प्रतिनिधी अंश हैं। खड़ी बोली अथवा अवधी की तुलना में ब्रजभाषा पर आधारित मध्यकालीन काव्य भाषा सबसे अधिक विकसित हुई। मध्यप्रदेश में विकसित होने के साथ–साथ इसका सांस्कृतिक प्रभाव बंगाल, असम तथा उड़ीसा के पूर्वी क्षेत्रों में पहुंचा, जहां मध्यकालीन वैष्णव काव्य की एक नयी भाषा शैली विकसित हुई श्ब्रजबूलिश ब्रजबूलि का आधार रूप पुरानी बंगला अथवा मैथली था, पर ब्रज भाषा के शब्दों और प्रयोगों को मिलकर उसमें कुछ ब्रज प्रदेश का वातावरण लाये का सजग प्रयत्न इन मध्यकालीन वैष्णव कवियों ने किया। पन्द्रहवीं सोलहवीं शती में रचे गये इन ब्रजबूलि पदों का विस्तृत साहित्य हमें उपलब्ध होता है, ब्रजबूलि का आकर्षण इतना दुनिर्वार रहा, कि आधुनिक काल तक में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इसमें कुछ पदों की रचना भानुसिंह के नाम से की।

ब्रजभाषा काव्य परंपरा के संबंध में रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है ब्रजभाषा काव्य की परंपरा गुजरात से लेकर बिहार तक और कुमॉऊ गढ़वादन से लेकर दक्षिण भारत की सीमा तक बराबर चली आयी है। (2)

ब्रजबूलि काव्य को ध्यान में रखते हुए इस क्षेत्र और परंपरा को प्रायः समूचे उत्तर भारत में प्रसारित माना जा सकता हैं।

उच्च भाव व चिंतन के स्तर पर भाषा कैसे वस्तु और संवेदना को अनुशासित करती है, इसका अच्छा प्रमाण यह है कि एक बार मध्यदेश में ब्रज के काव्य भाषा रूप में स्वीकृत हो जाने पर भक्तिकाल तथा रीतिकाल के अधिकतर कवि राधा और कृष्ण को केन्द्र में रखकर ही काव्य रचना करते रहे। राधाकृष्ण ब्रजभाषा और ब्रजबूलि सब जैसे परस्पर संश्लिष्ट हो गये। रीतिकालीन कवि ने तो किंचित प्रगल्भ स्वर में घोषित ही कर दिया था –

आगे के सुकवि रीझि है, तो कविताई न तो
राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानौ हैं।
ब्रजभाषा की कविताई और राधिका कन्हाई का श्सुमिरनश एकाकार हो गये।

इस प्रसंग में यह स्मरणीय है कि मध्यकालीन काव्य भाषा के बदलते हुए आधारों के बावजूद उसके रूप में विच्छिन्नता का कहीं कोई लक्षण नहीं आता, वरन् वह अधिकाधिक समरस और संश्लिष्ट होती जाती हैं। रामचरितमानस अवधी के आधार पर

लिखा गया है, और सूरसागर ब्रजभाषा के आधार पर, काव्य भाषा के स्तर पर दोनो में कोई वैसा बड़ा अन्तर नहीं रह जाता, इसके कई कारण है। पहली बात तो यह कि संस्कृत का तत्सम् अथवा अर्धतत्सम् शब्द समूह मध्यकालीन कवियों ने बहुत बड़ी मात्रा में प्रयुक्त किया है। समान सांस्कृतिक परंपरा और भक्तिकाल पद्वति के संदर्भ में विशेषतः यह तत्सम शब्दावली अन्य भाषिक अन्तरों को दबा देती हैं। व्याकरणीय प्रयोगो की दृष्टि से इन सभी कवियों की ब्रजभाषा में कन्नौंजी, बुन्देली और अवधी के प्रयोग बराबर मिलते रहते हैं। इसमें भी काव्य भाषा के संदर्भ में विविध बोलीगत अन्तर हल्के पड़ जाते हैं। काव्यभाषा में सांस्कृतिक सन्दर्भो के कारण नामवाची शब्दावली का विशेष महत्व रहता है। अधिकतर कवियों में यह नामवाची शब्दावली जैसा संकेत किया गया, संस्कृत से तत्सम अथवा अर्थ तत्सम रूप में ली गई हैं। प्रायः इन कवियों की ब्रजभाषा में बली रूप (आकारांत, औकारान्त) अपेक्षया कम हैं। अधिकतर रूप बलहीन हैं। बली रूप तत्भव है, और बलहीन रूप तत्सम् अथवा अर्धतत्सम्। ये बलहीन तत्सम् अथवा अर्धतत्सम् रूप इन कवियों की नामवाची शब्दावली के प्रधान आधार हैं। कमल, भृंग, चन्द्र, मीन, मयूर–चंद्रिका जैसी शब्दावली पर ही ये कवि अधिकतर अपना अप्रस्तुत विधान विकसित करते हैं। इसी लिये इन कवियों में शब्द समूह के अतिरिक्त अप्रस्तुत विधान में भी समता दिखाई देती हैं। बहुत कुछ ऐसी स्थिति बिंबगठन की प्रकृति सामान्य अप्रस्तुत विधान की तुलना में कहीं अधिक विशिष्ट है, यह दूसरी बात है कि इस प्रकार कबीर, जायसी, सूर तुलसी, बिहारी देव आदि में संज्ञा अथवा नाम वाची शब्दावली बहुत कुछ समान हैं। व्याकरणिक ढॉचे में थोड़ी विभिन्नता है, पर प्रधान सांस्कृतिक शब्दावली संज्ञा की है, जिस स्तर पर हिन्दी की मध्यकालीन काव्य भाषा अपने वैविध्य के बावजूद एक पहचाना जाने वाला समग्र और व्यापक रूप उभरता हैं।

भाषा विशेषतः उच्चारण की प्रकृति से उस भाषा के छन्दों का भी संबंध रहता हैं। संस्कृत भाषा की संयोगात्मक प्रकृति के अनुरूप उसके वर्णवृत्तों का गठन रहा, जिसमें एक–एक वर्ण तथा उसकी मात्रा के क्रम तक का हिसाब था। श्भाखाश या हिन्दी की प्रकृति उत्तरोत्तर वियोगात्मक होती गयी, और इस बदली प्रकृति के अनुकूल कड़े वार्णिक वृत्तों के स्थान पर उन्मुक्त मात्रिक छन्दों का विकास हुआ, जहां ध्यान स्वयं पर अधिक था। भक्तिकाल के दोहा–चौपाई और पद तथा रीतिकाल के कवित्त सवैया और दोहा काव्य भाषा के इस लयात्मक विकास से जुड़े हुए हैं। मात्रिक छन्दों को पड़ते समय हस्व और दीर्घ के अन्तर को कुछ ढीला करना पड़ता है, एक ऐसी स्थिति जो संस्कृत वर्ण वृत्तों के संदर्भ में व्यावहारिक नहीं लगती। इन मात्रिक छन्दों के नियोजन ने भी हिन्दी काव्य–भाषा के समुचित विकास में योग दिया हैं।

मध्यकालीन काव्य–भाषा विशेषतः काव्यभक्त कवियों के संदर्भ में एकाधिक बार यह बात परिलक्षित की गयी कि यहॉ भाषा में अनुकरणात्मक शब्दों का प्रयोग विशेष रूचि के साथ हुआ हैं। सावित्री सिन्हा का यह पर्यवेक्षण महत्वपूर्ण है–कृष्ण भक्त कवियों की भाषा की सबसे मूल्यवान सम्पत्ति है, उनके द्वारा प्रयुक्त अनुकरणात्मक शब्द जिसके द्वारा उन्होने लीला पुरूष कृष्ण की मनोरम लीलाओं में प्राण भर दिये है, उन्हें साकार बना दिया है। (3)

यहॉ ध्यान रखना होगा कि अनुकरणात्मक शब्दों का प्रयोग काव्य–भाषा के संदर्भ में बहुत विकसित प्रकृया का द्योतक नहीं है। कृष्ण भक्त कवियों के गोचारण काव्य की स्वच्छन्द और उन्मुक्त प्रकृति में इस प्रकार के प्रयोग उपयुक्त है, पर तुलसी के रामचरितमानस के शिष्ट और मर्यादित विधान में अनुकरणात्मक शब्दो का विशेष उपयोग नहीं दिखता। ऐसी ही स्थिति आगे चलकर रीतिकालीन काव्य की हैं। उच्चारण के स्तर पर जो स्थिति अनुकरणात्मक शब्दों की है, शब्द प्रयोग की दृष्टि से वहीं स्थिति मुहावरे और लोकोक्तियों की है। बहुत बार समीक्षक मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग को काव्य–भाषा की सिध्दी का प्रतिमान मानते हैं। अनुकरणात्मक शब्दों की ही तरह मुहावरे या लोकोक्ति का स्वरूप सीधा बंधा हुआ हैं। उसमें स्वम् कवि के द्वारा भाषा रचे जाने की संभावना कम हो जाती है, इसलिए मुहावरे की सीमा है, कि वह अर्थ को विशेष स्थिति में लाकर प्रकाशित करता है, पर वहीं ही उसे रोक देता है, अर्थ की संभावनाएं उससे आगे नहीं बढ़ती। बोल–चाल की भाषा से सीधे उत्प्रेरित और मुहावरा प्रधान काव्य–भाषा होते हुए भी उर्दू में छोटे व हल्के मुहावरे के प्रयोग ही महत्व मिला है, वस्तुतः वहां बड़े–बड़े शायर, छोटे–छोटे अव्यय या संज्ञा शब्दों के आधार पर स्वयं मुहावरे की भंगिमा बना लेते हैं। बड़े और पूरे मुहावरे या लोकोक्तियां काव्य के अर्थ को विकसित नहीं करते, वरन कुछ अटपटे ही लगते है, इस दृष्टि से काव्य–भाषा में मुहावरों का विशेष संदर्भो में ही उपयोग है, उदाहरणार्थ संवादों में। तुलसी ने मुहावरों का चलता उपयोग इसी रूप में विशेष सफलता के साथ किया है। दशरथ–कैकयी, राम–लक्ष्मण या कैकयी–मन्थरा के संवादों में मुहावरों का उपयोग निखरता है, विशेषतः तीसरे युग्म में। चलती भाषा में मुहावरों का उपयोग अपेक्षया कम पढ़े लिखे और निम्न सामाजिक स्थिति से संबंध व्यक्ति, स्त्रियां सामान्यतः अधिक करती है। इसीलिए कैकयी–मन्थरा संवाद में मुहावरे काव्यी हो गये है– (हमहुँ कहबि अब ठकुर सोहाती, निज हित अनहित पशु पहिचाना, भामिनी भइहू दूध कई माखी) जबकि अन्य बहुत से स्थलों पर वे ऊपर से जड़े दिख सकते हैं। यो तो सामान्यतः मुहावरा बोलचाल की भाषा का, गद्य का गुण है, काव्य–भाषा का नहीं। सूरदास द्वारा प्रयुक्त कुछ मुहावरे एवं लोकोक्तियों के प्रयोग यहां व्यावहारिक प्रमाण के लिए दिये जा रहे है – एक डार के तोरे, धूम के हाथी, बरसति ऑखी, मूढ़ चढ़ाई, काहे कि द्वै नाम चढ़ावत, लोकोक्ति–बहे जात मांगत उतराई, जहां ब्याह तहं गीत, धान को गांव पयार से जाने, सूरदास तीनो नहीं उपजत धनियां धान कुम्हाड़े। एकात अपवाद को छोड़कर सूर की ये पंक्तियां उसके सामान्य पदो में आती है, श्रेष्ठ पदों में नहीं। कवि की कोमल काव्य कल्पना, अप्रस्तुत विधान और बिम्ब गठन के साथ इन मुहावरों और लोकोक्तियों का मेल प्रायः नहीं खाता, कवि का वैशिष्ट अर्थ को विकसनशील बनाने में है, मुहावरे चित्रात्मक रूप में ही सही अर्थ को पूरा का पूरा निकाल लेते है, उसे स्थिर करके खत्म कर देते हैं।

व्यावकरणिक स्तर पर भिन्नता रखने वाली हिन्दी की विविध बोलियां एक काव्य–भाषा के रूप में संगठित होती रही है, कामताप्रसाद गुरू ने लिखा है– यद्यपि आधुनिक हिन्दी का बृजभाषा से घनिष्ठ संबंध है, तथापि व्याकरण की दृष्टि से दोनो भाषाओं में बहुत अंतर है। (4)

जहां सांस्कृतिक शब्दावली, उस पर विकसित अप्रस्तुत विधान, बिम्ब गठन व छन्द रूप व्याकरणिक दृष्टि से अलग–अलग हिन्दी क्षेत्र की विविध बोलियों को एक काव्य–भाषा के रूप में विकसित करते है, वहीं व्याकरणिक दृष्टि से आधुनिक खड़ी बोली हिन्दी के सबसे निकट पड़ने वाली उर्दू, हिन्दी के इस बोली – संश्लेष से अलग हो जाती हैं। क्योंकि मुहावरे को अर्थ

क्षमता का सबसे बड़ा साधन मानने वाली उर्दू हिन्दी काव्य–भाषा के प्रकृया से मेल नहीं खाती। उर्दू में व्यजंना शब्दो के सीधे प्रयोग के बीच मुहावरे में से व्यत्पन्न होती है, वहीं हिन्दी में वह लाक्षणिक विधान या बिम्ब प्रकृया में से विकसित होती है। उर्दू काव्य–भाषा में बिम्ब का प्रयोग विरल है। हां, रीतिकालीन काव्य भाषा उर्दू काव्य–भाषा में एक गुण समान है, और वह है, अव्यय या छोटे शब्द–शब्दांशों का सार्थक प्रयोग। मध्यकालीन काव्य–भाषा के विकासक्रम में यह बात आसानी से परिलक्षित की जा सकती है कि काव्य–भाषा के सामान्य रूप में बहुत से उपमान और प्रतीक क्रमशः रूढ़ हो गये है। रीतिकाल में जब ठाकुर अपने अनेक समकालीनों के प्रति संकेत करते हुए बड़ी खीज और व्यग्ंय के स्वर में कहते है –

सीखी लीनों मीन मृग खंजन कमल नैन।
सीखी जीनों जस औ प्रताप को कहानी है।।
सीखी लीनों कल्प वृक्ष कामधेनु चिंतामनी।
सीखी लीनों मेर औ कुबेर गिरी आनों हैं।।

तो उनकी कठिनाई समझ में आती हैं। यह अकारण नहीं था, कि भारतेन्दु तक आते–आते काव्य–भाषा के रूप में ब्रज की क्षमता छीज जाती है, और नयी शक्ति संभावना के रूप में खड़ी बोली का प्रयोग प्रांरभ होता हैं। यह हिन्दी काव्य–भाषा को एक असाधारण सुविधा रही है कि अपने लम्बें क्रम विकास में एक आधार के चुकने पर वह दूसरे आधार को स्वीकार कर लेती है। कबीर और सूर से आंरभ हुई ब्रजभाषा कैसे विकसित और समृद्व हुई, फिर कैसे उत्तर रीतिकाल में वह जड़ व स्थिर होती गयी, इसका एक रोचक साक्ष्य इस काल के आचार्य कवि भिखारीदास में मिलता है, जिन्होनें काव्य–भाषा में कोई नई क्षमता विकसित नहीं की, परंतु अपने काव्य निर्णय के आंरभ में ही काव्य–भाषा के रूप में ब्रजभाषा प्रयोग की शास्त्रीय व्याख्या की है। संत कबीर के समय की बहते नीर की तरह भाखा मानों आचार्य भिखारीदास तक आते–आते फिर कूपजल में परिणित हो गयी। शायद यही प्रवाह की नियति हैं।

रीतिकालीन काव्य–भाषा में बहुत बार अप्रस्तुत विधान भाषा का अंग नहीं बन पाता, उसका अस्तित्व अलग से ही बना रहता है, इसके विपरीत बिंब सामान्य काव्य–भाषा में पर्यवसित हो जाता हैं। रीतिकालीन काव्य का बहुत सा अंश तो किन्हीं शास्त्रीय लक्षणों के उदाहरण के रूप में लिखा गया है, इसमें बिंब प्रयोग कम और अलंकार विधान अधिक है। काव्य–भाषा के रूप में ब्रजभाषा के छीजने का एक मुख्य कारण है, क्योंकि अलंकार का विकास भाषा की सहज स्वाभाविक शक्ति की कीमत पर होता है, जबकि प्रत्येक बिंब अपने में विशिष्ट विधान होने के कारण आवृत नहीं होता, और इसलिए उसके प्रयोग से काव्य–भाषा समृद्व होती है, क्षरित नहीं।

भाषा के विकास में मिथ और पुराण कथा के विशिष्ट योग की चर्चा पश्चात् भाषा वैज्ञानिक और समीक्षक बार–बार करते है। जबकि भारतीय भाषाओं के विकास में पुराण कथा का योगदान नगण्य है, और पश्चिमी देशों से हमारी स्थिति भिन्न है। मध्यकालीन काव्य का तो मुख्य आधार पुराण कथाओं के आख्यान और संदर्भ है, पर ये आख्यान और संदर्भ यहा कथानक के स्तर पर परिचालित होते है, श्मिथश – की भांति काव्य–भाषा में पर्यवसित नहीं हो पाते। इसका मुख्य कारण है, कि हमारी पुराण कथाएं पश्चिम की मिथ की तरह धर्मनिरपेक्ष नहीं है, वरन् ये हमारी धार्मिक जीवन का प्रधान अंग है, हनुमान अपने अनेक संदर्भो के सहित हमारी धार्मिक आस्था के विषय है, और जो धार्मिक विश्वास का आलंबन है, वह मिथ नहीं हो सकता। हनुमान के लिए हम आज भी अपनी भाषा में आदरार्थक बहुवचन सहायक क्रिया श्हैंश, का प्रयोग करते है – हनुमान हैं। तब हनुमान शब्द अपने सारे आंषगों को छोड़कर सामान्य काव्य–भाषा में कैसे घुल–मिल सकता है।

मध्यकालीन काव्य–भाषा में ब्रजभाषा का आधार सबसे अधिक समय तक प्रायः तीन सौ वर्षो की अनवरत् परंपरा में – और सबसे अधिक क्षमता के साथ प्रयुक्त हुआ है। 1676 ई. के आस–पास लिखे गये अपने ब्रज भाषा के व्याकरण में मिर्जा खॉ का कहना है, भाखा विशेषतः ब्रज प्रदेश व उसके निकटवर्ती क्षेत्र से संबध्द है। इसी प्रसंग में वे आगे कहते है संस्कृत और प्राकृत को छोड़कर भाखा में अन्य सभी बोलियां समाहित है। यहां यह भी स्मरणीय है कि मिर्जा खॉ के लिए हिन्दी तथा श्भाखाश पद समानार्थक है। और वे ब्रजभाषा नहीं केवल भाखा कहते है। मिर्जा खॉ की भाखा सभी भाषाओं में सर्वाधिक क्षमतावान जान पड़ती हैं। उनकी दृष्टि में अलंकृत काव्य के लिए यह सबसे उपयुक्त भाषा है, साथ ही प्रेमी और प्रेमिका की प्रशंसा गायन के लिए भी। यह अधिकतर कवियों और सुसंस्कृत व्यक्तियों द्वारा बोली और प्रयुक्त होती हैं। (5)

ब्रजभाषा का प्रयोग मध्यकाल में इतने विस्तृत रूप में हुआ, इसके कई कारण हैं। एक तो शौरसेनी प्राकृत और अपभ्रंश का सर्वाधिक दाय ब्रज भाषा में सुरक्षित रहा। इसीलिये ग्रियर्सन ब्रजभाषा को साहित्यिक हिन्दोस्तानी की तुलना में पश्चिमी हिन्दी का श्रेष्ठतर प्रतिनिधि मानते हैं। (6)

शौरसेनी अपभ्रंश से सीधे विकसित होने के कारण ब्रजभाषा में ध्वन्यात्मक लालित्य भी अधिक माना जाता हैं। यहॉ स्मरणीय है, कि मथुरा की केन्द्रीय ब्रजभाषा को छोड़कर ब्रजभाषा के शेष सभी बोलचाल के रूप बराबर श्रुति सुखद नहीं कहे जा सकते, बल्कि पूर्वी आगरा तथा कुछ अन्य क्षेत्रों की ब्रजभाषा तो कर्णकटु ही कहीं जायेगी। परन्तु साहित्यिक परंपरा में ब्रजभाषा का कोमलकान्त पदावली वाला ही रूप प्रयुक्त होता रहा। फिर 19 शताब्दी में ब्रजभाषा के परंपरित लालित्य व खड़ी बोली की नयी शक्ति के बीज संघर्ष हुआ और परिणाम स्वरूपः खड़ी बोली के पक्ष में गया। समूचा उत्तर भारत कृष्णभक्ति परंपरा से जुड़े रहने के कारण भी ब्रजभाषा का क्षेत्र विस्तृत होता गया, एक सीमा के बाद तो ब्रजभाषा में लिखने का अर्थ हो गया राधा कृष्ण संबंधी काव्य की रचना करना।

मध्यकालीन काव्य–भाषा अपने श्रेष्ठ रूप में मूलतः तत्मयता के अनुभव को विकसित करती हैं। यह तत्मयता चाहे भक्त भगवान संबंध की हो, चाहे प्रेमी प्रेमिका संबंध की। उस युग के अधिकांश समाज के लिए तनाव न भाषा में थी न जिंदगी में। मध्यकालीन काव्य–भाषा में जो एकतानता की स्थिति मिलती है, उसका एक कारण यह तनाव का न होना हैं। पर कभी–कभी हमें

एकतानता की प्रतीती एकरसता की सीमा तक पहुंचा देती है, और रीतिकाल में ऐसा अनुभव कभी–कभी होने लगता है। वाक्य भंग असाधारण और साहसिक शब्द प्रयोग परस्पर विरोधी भाषिक वातावरण का निर्माण इस युग की काव्य–भाषा की विशेषता नहीं है, और न हो सकती थी। मध्यकालीन काव्यभाषा अपने परिष्कृत शब्दचयन शान्तलय मात्रिक छन्दों के प्रयोग के लिये पहचानी जाती हैं। उन्नीसवीं सती के संघर्ष और तनाव के साथ इस तन्मयता का मेल नहीं खा सकता था। भारतेंदू ने कुछ समय तक तनाव और तन्मयता को साथ–साथ लेकर चलने की कोशिश की तनाव खड़ी बोली के गद्य में, नाटकों और पत्रकारिता में, तथा तन्मयता ब्रजभाषा के कवित्त, सवैयों और पदों में। पर यह स्थिति स्वभावतः अधिक दिनों तक नहीं चल सकती थी। अतंतः खड़ी बोली सम्रगतः काव्य–भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गयी, और उसके साथ–साथ हिन्दीं क्षेत्र में नयी शक्ति और चेतना का उदय हुआ।

काव्य–भाषा का आधार बदलने से काव्य केवल परंपरित काव्यभाषा से ही सम्बद्व नहीं बना रहता, वरन एक बार फिर अपने को सीधे जनजीवन से जोड़ने का अवसर पाता हैं। ग्रिर्यसन ने हिन्दी–भाषा की जन प्रकृति को अच्छी तरह समझा कहां था, हिन्दी का अपना शब्द समूह विशाल है, इसकी जड़े उन ग्रामीण कृषकों की भाषा में है, जिस पर यह आधारित हैं। (7) और यहीं कारण है कि शताब्दियों तक केन्द्रीय राज्यश्रय की कोई चिंता किये बिना हिन्दी की काव्य परंपरा अपने ढंग से बराबर विकसित होती रही। हिन्दी कवि को जब राज्याश्रय दिया भी गया तो उसमें अस्वीकार कर दिया। अष्टछाप के कवि कुंभनदास के लिये प्रसिद्व है, कि उन्होनें अकबर बादशाह द्वारा दिये गये सम्मान को छोड़ते हुए कहॉ –

संतन को कहॉ सीकरी सो काम ?
आवत जात पनहियॉ टूटी बिसरि गयो हरिनाम।

इस पद को यदि आधुनिक समीक्षक की दृष्टि से देखा जाये तो तनाव व अर्न्तविरोध की एक रोचक मनः स्थिति यहॉ मिलेगी। जूतो के टूटने व हरिनाम के बिसरने का एक साथ जिस रूप में उल्लेख हुआ है, वह आधुनिक कविता के साहसिक संबंधों का स्मरण दिलाता हैं। पर वस्तुतः कुंभनदास बड़े सहज भाव से इन दोनों मनः स्थितियों को समीकृत कर रहे हैं। फतेहपुर सींकरी की यात्रा में गरीब भक्त के लिये दोनों विपत्तियॉ एक साथ आई – जूता टूटना और हरिनाम का विस्मरण होना। संत ऋषि अपने सरल विश्वास भाव से दोनो असमान स्थितियों का उल्लेख एक साथ कर रहे है, इस दृष्टि से यहॉ भी तन्मयता है, तनाव या अंर्तविरोध नहीं। यद्वपि अपने शब्द प्रयोग की दृष्टि से यह पद बराबर कुछ असाधारण सा लगता है।

निष्कर्ष –

मध्यकालीन काव्य–भाषा के वैविध्यपरक और संश्लिष्ट रूप की ओर यहॉ संकेत किया गया हैं। यह हिन्दी क्षेत्र के जातीय और सांस्कृतिक गठन से सम्बद्व है, जिसके मूल में एकान्विति की प्रधानता नहीं, वरन् बहुजातीय विकास का आधार है, इसीलिये विविध व्याकरणिक आधारों को लेकर भी मध्यकालीन काव्य–भाषा का समूचे हिन्दी क्षेत्र में एक समग्र और व्यापक रूप रचा गया हैं। इन आधारों या कि समग्र रूप को ब्रज, अवधी, खड़ी बोली आदि क्षेत्रीय नामों से प्रायः नहीं पुकारा गया। जैसा अभी मिर्जा खॉ के व्याकरण से साक्ष्य दिया गया, मध्य देश की समूची काव्य–भाषा भाषा को श्भाखाश या हिन्दी कहॉ गया है, और ये दोनो नाम परस्पर परिवर्तनीय रहे हैं। काव्य भाषा के रूप में ब्रजभाषा का सजग भाव से विश्लेषण तो बाद में भिखारीदास ने किया हैं। (8)

संदर्भ सूचि :–

(1)शुक्ल आचार्य रामचंद्र – हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. क्रं.–500
(2)शुक्ल आचार्य रामचंद्र – हिन्दी सा. व इतिहास, पृ.क्रं.–501
(3)सावित्री सिन्हा – ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यजंना शिल्प, पृ. क्रं.–84
(4)गुरू कामताप्रसाद – हिन्दी व्याकरण, पृ.क्रं.–698
(5)खॉ मिर्जा – ए ग्रामर आवद ब्रजभाषा, पृ.क्रं.–07
(6)ग्रियर्सन – भारत का भाषा सर्वेक्षण, भाग–09, पृ.क्रं.–63
(7)ग्रियर्सन – भारत का भाषा सर्वेक्षण, भाग–01, पृ.क्रं.–308
(8)चतुर्वेदी डॉ.रामस्वरूप – मध्यकालीन हिन्दी काव्यभाषा, पृ.क्रं.–183

मंजुला पाण्डेय
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), हिन्दी विभाग , शास.महा.वि.मरवाही,जिला–बिलासपुर (छ.ग.)

Publish Research Article
International Level Multidisciplinary Research Journal
For All Subjects

Dear Sir/Mam,

We invite unpublished Research Paper,Summary of Research Project,Theses,Books and Book Review for publication,you will be pleased to know that our journals are

Associated and Indexed,India

- International Scientific Journal Consortium
- OPEN J-GATE

Associated and Indexed,USA

- EBSCO
- Index Copernicus
- Publication Index
- Academic Journal Database
- Contemporary Research Index
- Academic Paper Databse
- Digital Journals Database
- Current Index to Scholarly Journals
- Elite Scientific Journal Archive
- Directory Of Academic Resources
- Scholar Journal Index
- Recent Science Index
- Scientific Resources Database
- Directory Of Research Journal Indexing

Golden Research Thoughts
258/34 Raviwar Peth Solapur-413005,Maharashtra
Contact-9595359435
E-Mail-ayisrj@yahoo.in/ayisrj2011@gmail.com
Website : www.aygrt.isrj.org